इकाई – 4

कारक मूल्य–निर्धारणः रुचियां–अवधारणा और रुचि के सिद्धांतय लाभ की प्रकृति, अवधारणाएं और लाभ के सिद्धांत

इस इकाई को पढ़ने के बाद, छात्र

1. ब्याज की अवधारणा और ब्याज के विभिन्न सिद्धांतों को समझ सकेंगे
2. लाभ की अवधारणा और लाभ के विभिन्न सिद्धांतों को समझ सकेंगे

Unit–IV

कीमतों के साधन–II
(FACTOR PRICING - II)

ब्याज (Interest) साधारणतया पूंजी के सेवाओं के लिए किए जाने वाले भुगतान को ब्याज कहा जाता है परन्तु अर्थशास्त्र में पूंजी शब्द का प्रयोग कई अर्थों में किया जाता है। पूंजी शब्द का प्रयोग मशीनों, इमारत, कारखानों तथा नकद पूंजी के लिए किया जाता है। पूंजी की इन सभी विभिन्न प्रकार की सेवाओं के लिए किया जाने वाला भुगतान ब्याज नहीं कहलाता है। ब्याज शब्द का प्रयोग केवल मुद्रा रूपी पूंजी के लिए एक निश्चित समय के लिए प्रयोग करने के लिए दिए जाने वाले भुगतान के लिए किया जाता है। इसलिए ब्याज को प्रतिशत के रूप में प्रकट किया जाता है। अतएव अर्थशास्त्र में मुद्रा की सेवाओं के लिए दिया जाने वाला भुगतान ब्याज कहलाता है।

प्रो. मैकोनल के अनुसार ''ब्याज वह कीमत है जो मुद्रा या ऋण योग्य कोष की सेवाओं के लिए दी जाती है।''

कुल ब्याज तथा शुद्ध ब्याज
(Gross Interest and Net Interest)

1. **कुल ब्याज** : ऋणी द्वारा पूंजी के प्रयोग के लिए ऋणदाता को जो कुल भुगतान किया जाता है, उसे कुल ब्याज कहते हैं।

कुल ब्याज के अंगः–इसमें निम्न तत्वों को शामिल किया जाता है :

(i) **शुद्ध ब्याजः**–शुद्ध ब्याज, जोकि केवल मुद्रा की सेवाओं के उपयोग के लिए दिया जाता है, वह कुल ब्याज का अंग है।

(ii) **जोखिम का पुरस्कारः–ऋ**णदाता को रुपया उधार देने में जोखिम उठानी पड़ती है। उसे यह डर होता है कि यह रुपया वापिस मिलेगा या नहीं।

(ii) **प्रबंध का पुरस्कारः**–ऋणदाता को ऋण देते और लेते समय कई प्रकार के प्रबंधों पर रुपया खर्च करना पड़ता है। ऋणदाता रुपये का हिसाब–किताब रखने के लिए मुनीम रखता है, रुपया न मिलने पर कानूनी कार्यवाही करना इत्यादि जो प्रबंध है, उनके लिए भी पुरस्कार कुल ब्याज में सम्मिलित होता है।

(iv) **असुविधाओं के लिए पुरस्कारः–**ऋणदाता को ऋण देने में बहुत ही असुविधा का सामना करना पड़ता है। यह सम्भव है कि आवश्यकता पड़ने पर ऋणदाता को रुपया वापसि न मिले और उसे कहीं और से उधार लेना पड़े। ऋणी के इंकार करने पर मुकदमा इत्यादि चलाने की असुविधा भी ऋणदाता को उठानी पड़ती है। इन सब असुविधाओं के लिए भी ऋणदाता कुछ पुरस्कार प्राप्त करता है। इसे भी कुल ब्याज में शामिल किया जाता है।

2. **शुद्ध ब्याजः–**शुद्ध ब्याज वह धनराशि है जो केवल मुद्रा के प्रयोग के बदले दी जाती है।

ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त
(Classical Theory of Interest)

ब्याज के बारे में सबसे पहले सिद्धान्त को प्रतिष्ठित या वास्तविक सिद्धान्त कहते हैं। इसे वास्तविक सिद्धान्त कहते हैं, क्योंकि यह वास्तविक कारकों जैसे पूंजी की उत्पादकता, बचत की प्रव त्ति आदि पर आधारित है। इस सिद्धान्त के दो भाग हैं। पहला भाग यह है कि ब्याज की दर क्यों उत्पन्न होती है। दूसरा यह कि उसके अनुसार ब्याज का दर निर्धारण किस प्रकार होता है।

(i) ब्याज क्यों उत्पन्न होता है–इसके बारे में विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अलग–अलग सिद्धान्त प्रस्तुत किए हैं।

पूंजी की सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त

कुछ अर्थशास्त्रियों जैसे माल्थस, जे.वी.से. आदि का विचार था कि पूंजी पर ब्याज इसलिए दिया जाता है कि क्योंकि पूंजी की अपनी उत्पादकता शक्ति होती है। पूंजी द्वारा उत्पादन अधिक होता है, अतः पूंजी प्राप्त करने वाला ब्याज देने को तैयार हो जाता है किन्तु ब्याज क्यों दिया जाता है। यह सिद्धान्त इसकी पूर्ण व्याख्या नहीं करता अतएव यह सिद्धान्त ब्याज के केवल मांग पक्ष की व्याख्या करता है। पूर्ति पक्ष को यह सिद्धान्त विचार में नहीं लाता है। इसके अतिरिक्त यह सिद्धान्त इस बार की व्याख्या नहीं करता कि उपभोग के लिए दिए गए ऋण पर ब्याज क्यों दिया जाता है।

आलोचना

(1) यह सिद्धान्त ब्याज के लिए केवल मांग पक्ष का अध्ययन करता है। इसमें ब्याज पर पूंजी की पूर्ति के पड़ने वाले प्रभाव की अवहेलना की गई है।

(2) यह सिद्धान्त उपभोग ऋणों पर दिए जाने वाले ब्याज की व्याख्या नहीं करता।

(3) पूंजी की उत्पादकता का अनुमान लगाना सम्भव नहीं है क्योंकि पूंजी उत्पादन के दूसरे साधनों की सहायता के बिना कोई उत्पादन नहीं कर सकती।

उपभोग स्थगन तथा प्रतीक्षा सिद्धान्त

Abstinence and Waiting Theory

उपभोग स्थगन का सिद्धान्त प्रसिद्ध अर्थशास्त्री सीनियर ने प्रतिपादित किया। उनके विचार में बचत करने में व्यक्ति कुछ त्याग करता है और यह त्याग है उपभोग का स्थगन। उपभोग की स्थगित करना एक दुःखद बात है, इसलिए व्यक्ति को उपभोग का स्थगन करने को प्ररित करने के लिए कुछ पुरस्कार मिलना चाहिए और यह पुरस्कार ब्याज ही है। अतः इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज उपभोग स्थगन का ही पुरस्कार है। समाजवादी लेखक कार्ल मार्क्स द्वारा सीनियर के इस सिद्धान्त पर आपत्ति की गई। उन्होंने बताया कि धनी व्यक्तियों द्वारा अपनी सभी आवश्यकताएँ पूरी करने के पश्चात् जो कुछ बचता है वह वे ऋण पर देते हैं। अतः उनके लिए विचार में धनी व्यक्ति कोई उपभोग के स्थगन का त्याग नहीं करते। मार्क्स की आलोचना के कारण ही मार्शन ने उपभोग के स्थगन के स्थान पर प्रतीक्षा शब्द किया है। उनके अनुसार जब कोई व्यक्ति रुपया बचाकर किसी को ऋण देता है तो कुछ समय तक उसका उपभोग नहीं कर पाता और प्रतीक्षा में रहता है और इस प्रतीक्षा के बलिदान के लिए ही उसे ब्याज दिया जाता है। आलोचना

(1) यह सिद्धान्त एकपक्षीय है। इसमें केवल पूर्ति के पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। ब्याज पर मांग के पड़ने वाले प्रभाव की अवहेलना की गई है।

(2) यह सिद्धान्त ब्याज निर्धारण का एक अधूरा सिद्धान्त है। ब्याज केवल उपभोग या प्रतीक्षा का पुरस्कार नहीं है।

ब्याज का बट्टा सिद्धान्त
Agio Theory

यह सिद्धान्त आस्ट्रियान अर्थशास्त्री वाम बावर्क ने प्रस्तुत किया। उसके अनुसार ब्याज इसलिए उत्पन्न होता है क्योंकि मनुष्य ही भावी उपभोग की अपेक्षा वर्तमान उपभोग को अधिक पसन्द करता है। मनुष्य अपनी भावी आवश्यकताओं को वर्तमान आवश्यकताओं की तुलना में कम महत्व देते हैं। ब्याज वह प्रलोभन है जो मनुष्य को अपने उपभोग को किसी भविष्य समय तक स्थगित करने के लिए दिया जाता है।

बाम बावर्क ने मनुष्य द्वारा भावी आवश्यकताओं को कम महत्व देने और वर्तमान उपभोग को अधिमान्यता देने के दो कारण बतलाए हैं। पहला यह कि मनुष्य अपनी भावी आवश्यकताओं की तीव्रता को नहीं जान सकता और उसकी वर्तमान की आवश्यकताएं अधिक तीव्र और प्रबल होती है। दूसरा यह है कि भविष्य अनिश्चित है और इसलिए मनुष्य अपनी उपभोग की सन्तुष्टि को अनिश्चित भविष्य में स्थगित नहीं करना चाहता। इस भविष्य के बट्टे के कारण ही मनुष्य को बचत करने तथा ऋण देने के लिए ब्याज देना पड़ता है।

फिशर का समय अधिमान्यता सिद्धान्त

यह सिद्धान्त इविंग फिशर ने प्रस्तु किया और उनका सिद्धान्त बाम बावर्क के बट्टा सिद्धान्त से काफी मिलता–जुलता है। ब्याज क्यों दिया जाता है की व्याख्या फिशर समय अधिमान्यता द्वारा करता है। समय अधिमान्यता से तात्पर्य एक समान मूल्य वाली तथा समान निश्चितता की भावी तुष्टि की अपेक्षा मनुष्य वर्तमान तुष्टि को अधिक अधिमान्यता देता है। वर्तमान तुष्टि के लिए अधिमान्यता के कारण ही वह अपनी आय को वर्तमान उपभोग पर व्यय करने के लिए व्यग्र रहता है। मनुष्य रुपया बचाकर ऋण देने के लिए तभी प्रेरित होगा जब उसे कोई प्रलोभन दिया जाए और यह प्रलोभन है ब्याज। अतएव ब्याज वह कीमत है जो मनुष्य द्वारा अपनी आय को वर्तमान उपभोग पर व्यय करने के लिए व्यग्रता को दूर करने के लिए दी जाती है।

ब्याज दर का निर्धारण
Determination of Rate of Interest

इस सम्बन्ध में तीन मुख्य सिद्धान्त हैं:

ब्याज का परम्परावादी सिद्धान्त

ब्याज के परम्परावादी सिद्धान्त का प्रतिपादन जे.एस.मिल, मार्शल आदि अर्थशास्त्रियों ने किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार उत्पादकता, मितव्यतिता, त्याग आदि वास्तविक तत्वों के कारण ब्याज उत्पन्न होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज का निर्धारण पूंजी की मांग तथा पूंजी की पूर्ति द्वारा होता है।

(i) **पूंजी की मांग:**–पूंजी की मांग उन उद्यमियों द्वारा होती है जो रुपया ब्यापार अथवा उद्योग में लगाना चाहते हैं। इन पूंजी पदार्थों द्वारा उपभोक्ता वस्तुएं उत्पादित करने में समय लगता है। पूंजी पदार्थों द्वारा वस्तुएं अधिक मात्रा में तथा अच्छी गुणवत्ता की बनाई जा सकती है। अतएव बचत की मांग वास्तव में पूंजीगत पदार्थों अथवा निवेश से उत्पादकता प्राप्त करने के लिए की जाती है। एक उद्यमी अन्य साधनों को स्थिर रख कर पूंजी की सीमान्त उत्पादकता का अनुमान लगा सकता है। पूंजी की सीमान्त उत्पादकता पर घटते प्रतिफल का नियम लागू होता है। इसलिए पूंजी की मांग या निवेश अधिक किया जाता है तो पूंजी की सीमान्त उत्पादकता कम दी जाती है। पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में एक उद्यमी पूंजी की मांग उस सीमा तक करेगा जहाँ पूंजी की कीमत अर्थात ब्याज तथा सीमान्त उत्पादकता बराबर हो जाए।

(ii) **पूंजी की पूर्तिः**–पूंजी की पूर्ति बचत पर निर्भर करती है। बचत उस समय होगी जब लोग अपनी आय को उपभोग पर कम व्यय करेंगे। इस सिद्धान्त के अनुसार बचत की पूर्ति पर उपभोग स्थगन, प्रतीक्षा, समय अधिमान आदि पर वास्तविक तत्वों का प्रभाव पड़ता है। इन वास्तविक तत्वों की पूर्ति में परिवर्तन आने से बचत की मात्रा में भी परिवर्तन आ जाता है। ये वास्तविक तत्व ब्याज की दर पर निर्भर करते हैं।

मांग और पूर्ति का सन्तुलन
या
ब्याज दर का निर्धारण

अब हम देखेंगे कि मांग और पूर्ति की शक्तियों की परस्पर क्रिया से ब्याज की दर कैसे निर्धारित होगी। ब्याज की दर उस स्तर पर निर्धारित होगी जिस पर निवेश के लिए बचतों की मांग और बचतों की पूर्ति एक दूसरे के बराबर होगी। इसे रेखाचित्र 7.1 में दिखाया गया है।

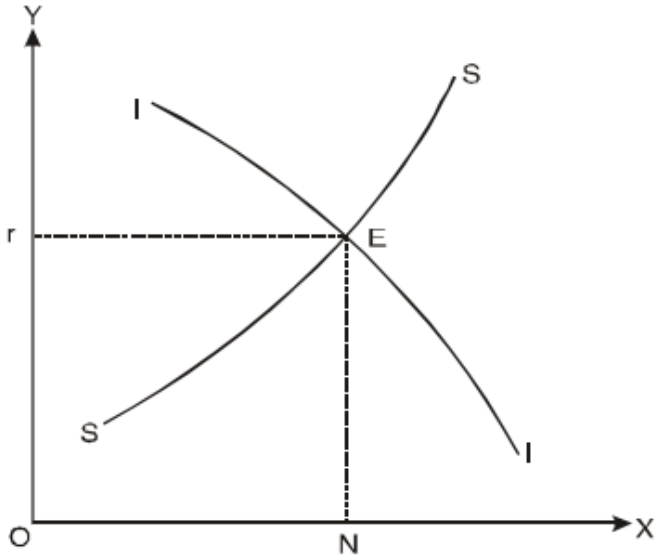

चित्र 7.1 : ब्याज की दर / बचत और निवेश

रेखाचित्र में II निवेश मांग वक्र है और SS बचतों की पूर्ति वक्र है। निवेश मांग वक्र II बचत पूर्ति वक्र SS एक दूसरे को वत ब्याज की दर पर काटते हैं। अतएव ब्याज दर वत निर्धारित होगी। इस सन्तुलित ब्याज की दर पर निवेश के लिए बचत की मांग और बचत की पूर्ति दोनों ON मात्रा के बराबर है।

आलोचना

इस सिद्धान्त की निम्न प्रकार से आलोचनात्मक समीक्षा की जा सकती है :

1. **पूर्ण रोजगार की गलत मान्यताः**–ब्याज के इस सिद्धान्त की साधनों के पूर्ण रोजगार की पूर्व मान्यता करने के लिए आलोचना की गई है। यह आपत्ति की गई कि साधनों के पूर्ण रोजगार की पूर्व मान्यता गलत और अपदार्थ है। साधनों के पूर्णरोजगार की स्थिति से अधिक निवेश उपभोग को घटा कर ही सम्भव हो सकता है क्योंकि उपभोग को घटा देने से उत्पादन के साधन उपभोक्ता पदार्थों से निकालकर पूंजी–पदार्थों के उत्पादन में लगाए जा सकते हैं। इसलिए जब साधनों को पूर्ण रोजगार प्राप्त होता है तो लोगों को उपभोग का त्याग करने के लिए प्रेरित करने के लिए ब्याज देना पड़ता है। जब साधन बड़ी मात्रा में बेकार पाए जाते हैं तब लोगों को अधिक बचत करने के लिए उपभोग का परित्याग करने के लिए प्रेरित करने की आवश्यकता नहीं होती। ऐसी अवस्था में उप्रयुक्त उत्पादन के साधनों को काम पर लगाकर अधिक निवेश सम्भव हो सकता है।
2. **आय स्तरों में परिवर्तन की उपेक्षाः**–पूर्व रोजगार की मान्यता ग्रहण करके इस सिद्धान्त ने आय स्तर में परिवर्तनों तथा उसके बचत और निवेश पर प्रभाव की उपेक्षा की है। यह सिद्धान्त ब्याज दर और बचत की मात्रा के बीच सीधा फलन सम्बन्ध स्थापित करता है। जैसे ब्याज की दर बढ़ती है, बचत की मात्रा भी अधिक होती है परन्तु दर पर निवेश के लिए मांग घट जाती है जिसके परिणामस्वरूप ब्याज की दर घटकर उस स्तर तक पहुंच जाती है जहाँ बचत तथा निवेश में और ब्याज की दर में सीधा फलन सम्बन्ध संदेहपूर्ण है और दूसरा इसलिए कि जब ब्याज दर बढ़ने के फलस्वरूप अधिक बचत की जाती है तो बचत की इस अधिक मात्रा में अधिक निवेश होना चाहिए क्योंकि इस सिद्धान्त में निवेश, बचत की मात्रा द्वारा निर्धारित

होता है। इसके अतिरिक्त इस सिद्धान्त की प्रक्रिया में आय में परिवर्तन को बिल्कुल ही विचार में नहीं लाया गया है। वस्तुतः जब ब्याज की दर बढ़ती है और फलस्वरूप निवेश घट जाता है तो आय में कमी हो जाएगी। आय में कमी हो जाने से बचत की मात्रा घट जाएगी। अतएव बचत और निवेश में समानता ब्याज दर में परिवर्तन द्वारा नहीं होती, बल्कि यह तो आय में परिवर्तन द्वारा होती है।

3. **वर्तमान आय में बचत मुद्रा राशि की पूर्ति का केवल मात्र स्रोत नहीं है:**—वर्तमान आय में से बचत ही मुद्रा पूर्ति का एकमात्र स्रोत नहीं है। लोगों के पास प्रायः वर्षों में संचित किया हुआ धन भी होता है जिसको किसी वर्ष भी निकाला जा सकता है जिससे बाजार में ऋण योग्य राशियों की पूर्ति बढ़ जाती है।

4. **अल्प उपभोग के निवेश पर प्रतिकूल प्रभाव की उपेक्षाः**—इस सिद्धान्त के अनुसार अधिक निवेश उपभोग घटाने से ही सम्भव हो सकता है। उपभोग में जितनी अधिक कमी की जाएगी उतनी अधिक मात्रा में पूंजी पदार्थों में निवेश होगा। जैसा कि हम जानते हैं पूंजी पदार्थों की मांग उपभोक्ता पदार्थों के लिए मांग से उत्पन्न होती है। इसलिए उपभोग में कमी जिसका अर्थ है उपभोक्ता पदार्थों के लिए मांग में कमी पूंजी पदार्थों की मांग को घटा देगी और इस प्रकार निवेश की प्रेरणा पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगी। उपभोग की इस कमी के निवेश पर प्रतिकूल प्रभाव की इस सिद्धान्त में उपेक्षा की गई है।

5. **बचत अनुसूची का निवेश अनुसूची से स्वतंत्र होने की पूर्व मान्यताः**—पूर्ण रोजगार तथा स्थिर आय के स्तर के पूर्व मान्यता का एक और भाव यह है कि इससे बचत अनुसूची में परिवर्तन के बिना निवेश मांग की अनुसूची में परिवर्तन होना माना गया है। उदाहरण के लिए रेखाचित्र में निवेश मांग वक्र घट जाने से नीचे की ओर सरक कर I^1I^1 की में आ जाता है तो ब्याज की गई संतुलन दर r^1 हो जाएगी जिस पर नया निवेश वक्र I^1I^1 दिए गए पूर्ति वक्र SS को काटता है किन्तु यह ठीक नहीं है क्योंकि निवेश में कमी के फलस्वरूप आय घट जायेगी चूँकि बचत का पूर्ति वक्र किसी दिए हुए आय स्तर को स्थिर मानकर खींचा जाता है, इसलिए जब आय घटती है तो बचत पहले की तुलना में कम हो जाएगी जिसके कारण बचत का पूर्ति वक्र दाईं और नीचे को सरक जाएगा, परन्तु इस सिद्धान्त में निवेश में परिवर्तन के फलस्वरूप आय स्तर में परिवर्तन होना नहीं माना जाता और बचत अनुसूची को निवेश अनुसूची से बिल्कुल स्वतंत्र होना समझा जाता है जो कि ठीक नहीं है।

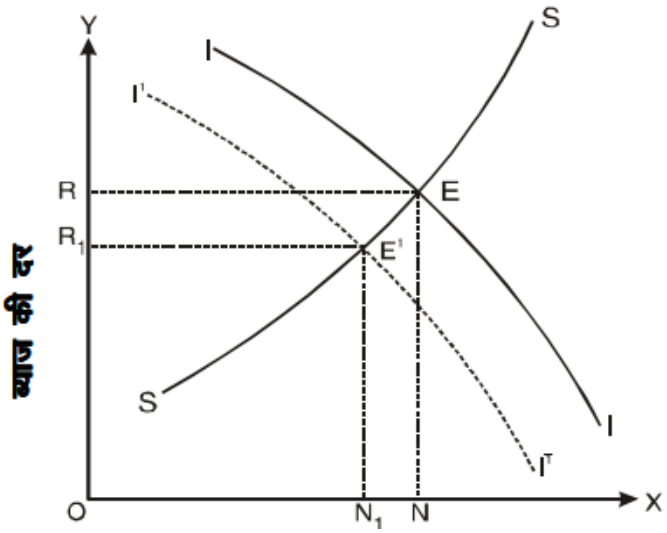

चित्र 7.2 : बचत और निवेश

ऋण–योग्य राशियों का सिद्धान्त
अथवा
नव–प्रतिष्ठित सिद्धान्त

इस सिद्धान्त को विकसित करने वाले अर्थशास्त्रियों में प्रमुख हैं विकसेल, बर्डिल, राबर्टसन आदि। इस सिद्धान्त के अनुसार वास्तविक शक्तियाँ जैसे कि बचत करने की भावना, प्रतीक्षा, समय अधिमान्यता तथा पूंजी की उत्पादकता ही केवल ब्याज दर को निर्धारित नहीं करते बल्कि मुद्रा का संचय तथा असंचय करना, बैंकों द्वारा मुद्रा

का स जन, उपभोग के प्रयोजनों के लिए मुद्रा–ऋण की मांग भी ब्याज दर के निर्धारण में भाग लेते हैं। इस प्रकार इस सिद्धान्त में ब्याज का निर्धारण मौद्रीक और गैर–मौद्रीक दोनों ही प्रकार की शक्तियों द्वारा होना माना गया है।

ब्याज दर का निर्धारण : इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर उस स्तर पर निर्धरित होती है जिस पर ऋण योग्य कोष की मांग तथा पूर्ति बराबर होती है। इसे निम्न रेखाचित्र में दिखाया गया है।

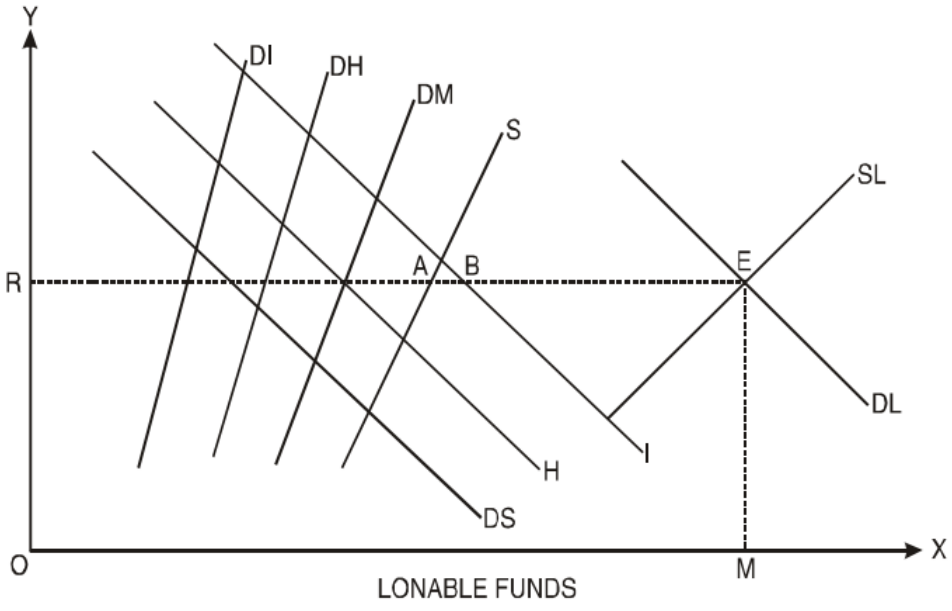

चित्र 7.3

इस सिद्धान्त को समझने के लिए ऋण योग्य कोष की मांग तथा पूर्ति का विस्त त अध्ययन करना आवश्यक है।

ऋण योग्य कोष की मांग (Demand for Loanable Funds) : ऋण योग्य कोष की मांग मुख्य रूप से तीन क्षेत्रों द्वारा की जानी है। ये क्षेत्र निम्नलिखित हैं:

(i) निवेश मांग:–ऋण योग्य कोष की मांग का मुख्य स्रोत फर्मों द्वारा निवेश के लिए की जाने वाली मुद्रा की मांग है।

(ii) उपभोग:–जब लोग अपनी आय से अधिक उपभोग पर खर्च करते हैं तो उन्हें ऋण लेना पड़ता है। अतएव उपभोग के लिए ऋण योग्य कोषों की मांग निजी व्यक्तियों तथा परिवारों द्वारा की जाती है। साधारणत: ब्याज की कम दर पर अधिक उपभोग ऋण लिए जाते हैं।

(iii) संचय:–ऋण योग्य कोषों की मांग उन व्यक्तियों द्वारा भी की जाती है जो मुद्रा का नकद रूप से संचय करना चाहते हैं।

ऋण योग्य कोष की पूर्ति (Supply of Loanable Funds) : ऋण योग्य कोष की पूर्ति मुख्य रूप से चार बातों पर निर्भर करती है:

(i) **बचत**:–यह ऋण योग्य कोष की पूर्ति का मुख्य साधन है। बचतें व्यक्तिगत क्षेत्र, व्यावसायिक क्षेत्र तथा सरकारी क्षेत्र तीनों द्वारा की जाती है।

(ii) **बैंक साखः**–यह ऋण योग्य कोष की पूर्ति का दूसरा साधन है। ब्याज की एक न्यूनतम दर के बाद बैंक साख ब्याज सापेक्ष होती है। इसका अभिप्राय यह है कि ब्याज की ऊंची दर पर बैंक अधिक ऋण देते हैं तथा नीची ब्याज की दर पर कम ऋण देते हैं।

(iii) **बचतों का असंचय** : ऋण योग्य पूर्ति का तीसरा साधन पिछली बचतो का असंचय है। इसका अर्थ है कि लोग मुद्रा का जो संचय करते हैं, उसे उधार दे देते हैं।

(iv) **अनिवेशः**–अनिवेश से अभिप्राय है कि मशीनों के घिसने पर उनका प्रतिस्थापन नहीं किया जाए। इस प्रकार घिसावट पर खर्च न करने से जो रुपया बचता है उसे ब्याज के रूप में दे दिया जाए। ब्याज की दर बढ़ने से अनिवेश बढ़ता है तथा ब्याज की दर कम होने पर अनिवेश कम हो जाता है।

आलोचनात्मक समीक्षा

1. **अनिर्धारणीय** : इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर ऋण योग्य कोषों द्वारा निर्धारित होती है। ऋण योग्य कोष आय पर निर्भर करते हैं और आय निवेश स्तर पर निर्भर करती है। निवेश का स्तर, ब्याज की दर पर निर्भर करता है। इसलिए जब आय का पता नहीं होगा, हम ब्याज की दर का अनुमान नहीं लगा सकते तथा बिना ब्याज की दर का पता लगाये आय का अनुमान नहीं लगा सकते।

2. **पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता** : यह सिद्धान्त लार्ड केन्ज के अनुसार पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है।

3. **आय पर निवेश के प्रभाव की उपेक्षा** : यह सिद्धान्त आय पर निवेश के प्रभाव की उपेक्षा करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार ऊंची ब्याज की दर पर लोग अधिक बचत करेंगे परन्तु यह सदैव सही नहीं होता। ऊंची ब्याज की दर के कारण निवेश कम होता है, निवेश कम होने के कारण आय कम होती है। आय कम होने के कारण बचत कम होती है।

4. **विभिन्न तत्वों का मिश्रण** : यह सिद्धान्त कई तत्वों जैसे वास्तविक तथा मौद्रीक तत्वों को एक साथ मिलाकर ब्याज के निर्धारण का अध्ययन किया जाता है। ये तत्व एक–दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं इसलिए ब्याज के निर्धारिण से इनके प्रभावों का अलग–अलग अध्ययन किया जाना चाहिए।

केन्ज का ब्याज सम्बन्धी नकदी–अधिमान सिद्धान्त

(Keynes's Liquidity Preference Theory of Interest)

यह सिद्धान्त प्रतिपादित करते हुए केन्ज ने नकदी–अधिमान की एक नई धारणा प्रस्तुत की है और इस नई धारणा के आधार पर अपना यह नया ब्याज दर सिद्धान्त स्थापित किया। अतः इस सिद्धान्त की व्याख्या करने से पूर्व हमें यह समझना चाहिए कि नकदी अधिमान का क्या अर्थ है और लोगों में नकदी अधिमान किन कारणों से होता है।

नकदी अधिमान का अर्थ

केन्ज ने बताया कि हम अपने धन को कई रूपों में रख सकते हैं। उन विभिन्न रूपों में सबसे सरल रूप मुद्रा या नकदी है क्योंकि हमारा धन नकदी के रूप में हो तो हम इसे इच्छानुसार प्रयोग कर सकते है। इसके विपरीत यदि हमारा धन भूमि, मकान, कारखाने, शेयरों आदि के रूप में हो तो उसे तत्काल अपनी इच्छानुसार प्रयोग नहीं कर सकते। पहले उसे नकदी के रूप में बदलना पड़ता है, तब जाकर उससे हम अपनी वांछित वस्तु या सेवा प्राप्त कर सकते हैं। अपने धन को नकदी के रूप में न रखकर भूमि, मकान, कारखाने, शेयरों तथा ऋणपत्रों के रूप में रखने से एक लाभ यह होता है कि हमें इनसे आय प्राप्त होती है जैसे भूमि, मकान आदि से किराया, शेयरों से

लाभांश मिलता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि धन को नकदी के रूप में रखने से लाभ तथा हानियां दोनों होते हैं। अतः यह हमारे अपने निर्णय पर निर्भर करता है कि किसी समय हम नकदी को धन के अन्य रूपों की तुलना में कितना अधिमान प्रदान करते हैं। किसी भी समय व्यक्तियों का नकदी के लिए कुछ अधिमान होता है, किन्तु यदि उनको उस नकदी के लिए उस समय की प्रचलित ब्याज दर से ऊंची ब्याज दर दी जाए तो अधिक सम्भावना यह होगी कि वे अपनी नकदी को कुछ भाग ऋण पर दे देंगे और अपने पास कम नकदी रखने को तैयार हो जाएंगे। इसे हम यों कह सकते हैं कि ब्याज एक ऐसा प्रलोभन है जिसके द्वारा लोगों की नकदी की इच्छा या अधिमान को खरीदा जा सकता है।

नकदी अधिमान के प्रयोजनः–नकदी की मांग निम्नलिखित तीन प्रयोजनों से की जाती हैः

(a) क्रय–विक्रय का काम चलाने के लिएः–प्रत्येक व्यक्ति तथा फर्म को अपने प्रतिदिन के क्रय विक्रय के लिए मुद्रा की आवश्यकता होती है। इसका कारण यह होता है कि लोगों तथा फर्मों द्वारा किए जाने वाले व्यय तथा उन्हें प्राप्त होने वाली आय में समय का अन्तर होता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति का फर्म आय का कुछ भाग क्रयविक्रय के लिए नकदी के रूप में रखना पड़ता है।

(b) पूर्वोयापी प्रयोजन :–प्रत्येक व्यक्ति तथा व्यवसाय की यह प्रव त्ति होती है कि वह कुछ नकदी अपने पास इसलिए रखे की उसे आड़े समय में काम आए। एक व्यक्ति को बीमारी, बेरोजगारी, दुर्घटना आदि का सामना करना पड़ सकता है। प्रत्येक व्यक्ति इन कठिनाईयों से बचने के लिए मुद्रा का कुछ भाग नकद के रूप में रखना चाहता है। सावधानी उद्देश्य के लिए रखी गई मुद्रा या नकदी की मात्रा आय स्तर पर निर्भर करती है।

$$Lp = f(y)$$

यहाँ

Lp = सावधानी या पूर्वोयापी प्रयोजन के लिए मुद्रा की मांग।
Y = आय।

(c) सट्टा प्रयोजनः–ब्याज की दर में भविष्य में परिवर्तन होता रहता है। जब लोगों को यह आशा होती है कि भविष्य में ब्याज की दर बढ़ जाएगी तब वे अपनी नकद मुद्रा को वर्तमान समय में उधार नहीं देंगे, जिसे वे भविष्य में ब्याज की दर बढ़ने पर नकद मुद्रा उधार देकर आय प्राप्त कर सकें। इसे सट्टा प्रयोजन कहा जाता है। इस प्रयोजन के किलए नकदी की मांग ब्याज सापेक्ष होती है। इसको हम निम्न समीकरण के रूप में व्यक्त कर सकते हैं।

$$Ls = f(r)$$

यहाँ

Ls = सट्टा प्रयोजन के लिए मुद्रा की मांग
Or = ब्याज की दर

ब्याज दर का निर्धारण
(Determination of Rate of Interest)

केन्ज के सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर नकदी या मुद्रा की मांग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। किसी समय देश में मुद्रा की पूर्ति कितनी होगी इसका निर्णय देश के मुद्रा अधिकारी के हाथ में होता है। अतः जहाँ तक मुद्रा की पूर्ति का प्रश्न है, वह तो सरकार या मुद्रा अधिकारियों द्वारा अपनाई गई नीति पर ही निर्भर करती है। ब्याज दर के निर्धारण को निम्न रेखाचित्र में दिखाया गया हैः

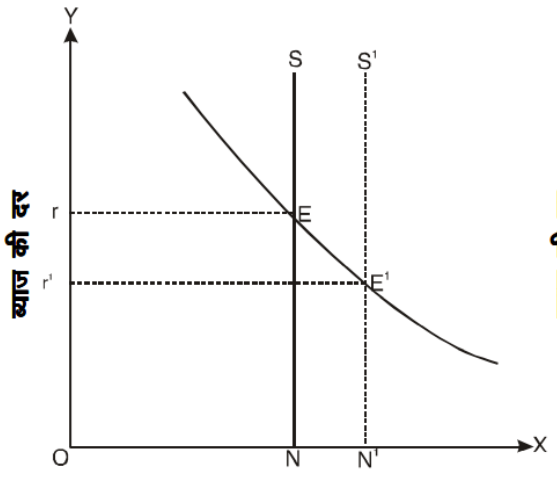

चित्र 7.4 : मुद्रा की मात्रा

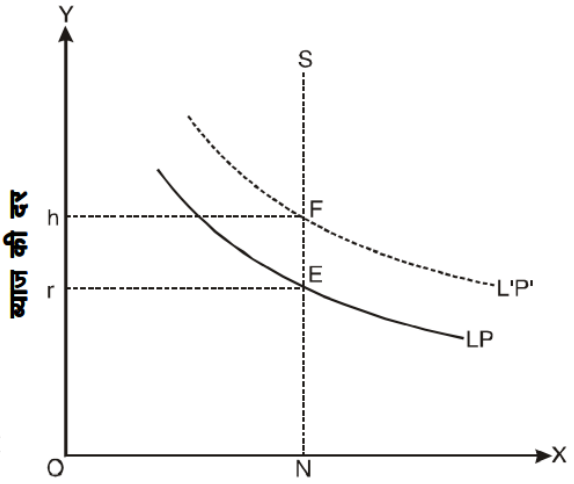

चित्र 7.5 : मुद्रा की मात्रा

ब्याज का यह केवल केन्ज द्वारा प्रस्तुत स्वरूप जान लेने पर यह समझना कठिन नहीं होगा कि ब्याज की दर इस बात पर निर्भर करती है कि नकदी की पूर्ति की तुलना में नकदी अधिमान अर्थात नकदी रखने की इच्छा कितनी प्रबल है। दूसरे शब्दों में नकदी अधिमान जितना अधिक प्रबल होगा, उतना ही ब्याज दर अधिक होगी और मुद्रा की पूर्ति या मात्रा जितनी अधिक होगी, उतनी ब्याज दर कम होगी। यदि किन्हीं कारणों से मुद्रा–मात्रा कम हो जाए तो ब्याज दर बढ़ जायेगी।

मान लीजिए रेखाचित्र में मुद्रा–मात्र ON है और लोगों का नकदी अधिमान इतना है कि जिसे LP नकदी अधिमान–वक्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है तब ब्याज दर त होगी। अब यदि नकदी अधिमान तो वही रहे अर्थात नकदी अधिमान वक्र स्च ही रहे परन्तु केन्द्रीय मुद्रा मात्रा में बढ़ाकर ON कर दें तो ब्याज दर त' हो जाएगी जो पूर्व ब्याज दर से काफी कम है। अब मान लीजिए कि युद्ध के डर से या व्यवसायों में निराशा की भावना फैल जाने से लोगों का नकदी अधिमान तो बढ़ जाता है परन्तु मुद्रा मात्रा पहले जितनी अर्थात ON रहती है। नकदी अधिमान बढ़ने से नकदी अधिमान–वक्र ऊपर की ओर सरक जाएगा। इसे दूसरे रेखाचित्र में LP_1 में दर्शाया गया है। इसका प्रभाव यह होगा कि ब्याज की साम्य दर बढ़ जाएगी और यह वत की बजाय वी हो जाएगी। ऋऋअतः हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि ब्याज दर भी मुक्त बाजार की अन्य कीमतों की भांति उस स्तर पर स्थापित हो जाती है जिस पर कि मांग तथा पूर्ति एक–दूसरे के साथ सन्तुलन में होगी।

केन्ज के ब्याज के नकदी अधिमान की आलोचना

1. केन्ज के ब्याज के निर्धारण में वास्तविक तत्वों की उपेक्षा की:–ब्याज की दर पूर्णतया मौद्रिक तत्व नहीं है। ब्याज की दर के निर्धारण में पूंजी की उत्पादकता और बचत की भावना जैसे वास्तविक शक्तियाँ भी हैं। इस सिद्धान्त में ब्याज दर को निवेश मांग से स्वतंत्र बताया है। वस्तुतः यह स्वतंत्र नहीं है। व्यवसायियों की नकदी की शक्तियाँ अधिकांशतः पूंजी–निवेश के लिए मांग द्वारा निर्धारित होती है। पूंजी–निवेश के लिए मांग पूंजी की सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करती है। अतएव ब्याज दर पूंजी की सीमान्त आय उत्पादकता तथा निवेश मांग से स्वतंत्र रूप से निर्धारित नहीं होती। केन्ज ने इसकी उपेक्षाकी है।

2. इस सिद्धान्त में भी ब्याज दर निश्चित रूप से निर्धारण नहीं होती : केन्ज के अनुसार ब्याज दर मुद्रा के लिए सट्टा–मांग तथा उसको सन्तुष्ट करने के लिए मुद्रा की पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। किन्तु कुल मुद्रा पूर्ति दी हुई होने पर हम यह नहीं जान सकते हैं कि मुद्रा के लिए सट्टा–मांग कितनी होगी यदि हमें पहले मुद्रा के लिए

क्रय–विक्रय की मांग मालूम न हो। चूंकि आय का स्तर मालूम न हो तो हमें मुद्रा के लिए क्रय–विक्रय की मांग भी ज्ञात नहीं हो सकती। इसलिए केन्ज के सिद्धान्त में ब्याज दर निश्चित रूप से निर्धारित नहीं होती।

3. बचतों के बिना तरलता सम्भव नहीं :–केन्ज़ के अनुसार ब्याज तरलता अथवा नकदी त्यागने का पुरस्कार है और यह बचत प्रेरणा अथवा प्रतीक्षा करने का पुरस्कार नहीं है। परन्तु प्रश्न यह है कि बचत के बिना तरल अथवा नकदी के रूप में रखने के लिए मुद्रा राशियाँ कहाँ उपलब्ध होगी और नकदी त्यागने का प्रश्न ही नहीं उठता, यदि पहले से मुद्रा न बचाई जाए तो। इस प्रकार ब्याज की दर के निर्धारण में बचत से घनिष्ठ सम्बन्ध है जिसकी केन्ज ने उपेक्षा की है।

लाभ
(Profit)

लाभ क्या है?–राष्ट्रीय आय में से उद्यमी (Entrepreneur) को मिलने वाला भाग लाभ कहलाता है। एक उद्यमी का मुख्य कार्य अनिश्चितता को सहन करना या जोखिम उठाना होता है। उद्यमी को इन कार्यों के बदले में जो आय प्राप्त होती है, उसे लाभ कहा जाता है।

परिभाषाएं (Definitions)

अर्थशास्त्रियों ने लाभ शब्द की परिभाषा दो प्रकार से की हैः

(1) लाभ की मात्रा के अनुसारः–प्रो. जैकब औसर के अनुसार, "एक व्यवसाय की बाह्य तथा आंतरिक मजदूरी, ब्याज तथा लगान देने के पश्चात जो अवशेष रह जाता है, वह लाभ है।''

(2) लाभ के स्रोत के अनुसारः–प्रो. हैनरी ग्रेसन के अनुसार, "लाभ नये आविष्कार लागू करने, जोखिम तथा अनिश्चितता उठाने तथा बाजार की अपूर्णताओं का परिणाम हो सकता है।''

लाभ की धारणायें (Concepts of Profits)

(1) कुल लाभ (Gross Profit) : एक उद्यमी की कुल आय तथा कुल बाह्य लागतों (Explicit Costs) के अन्तर को कुल लाभ कहते हैं।

Gross Profit = Total Revenue & Explicit Costs

(2) आर्थिक या शुद्ध लाभः–आर्थिक लाभ का अनुमान लगाने के लिए कुल लाभ में से आंतरिक लागतें तथा घिसावट और बीमा आदि का व्यय घटा दिया जाता है।

Economic Profit = Gross Profit & Implicit Profit

OR

Economic Profit = Total Revenue & Total Costs

लाभ के सिद्धान्त
(Theory of Profit)

लाभ का निर्धारण करने वाले बहुत से सिद्धान्त हैं। परन्तु इस समय कोई ऐसा सिद्धान्त नहीं, जो सर्वमान्य हो। यदि यह कहा जाए कि सभी सिद्धान्त जो अभी तक दिए गए हैं असन्तोषजनक हैं तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। इनमें से प्रत्येक सिद्धान्त लाभ के किसी एक पक्ष की व्याख्या करता है। आर्थिक सिद्धान्त में सम्भवतः इतना अव्यवस्थित और अनियमित ऐसा कोई विषय नहीं होगा जितना कि लाभ का सिद्धान्त है। लाभ के मुख्य सिद्धान्त आगे दिए अनुसार हैं:

5.1 लाभ का ग्यात्मक सिद्धान्त (Dynamic Theory of Profit)

इस सिद्धान्त की विवेचना प्रो. जे.बी. क्लार्क (J.B. Clark) ने की है। उनके अनुसार, लाभ एक गत्यात्मक आधिक्य (Dynamic Surplus) है जो केवल गत्यात्मक स्थिति में उत्पन्न होता है तथा अगत्यात्मक अवस्था (Static Condition) में लाभ नहीं मिलता। प्रो. क्लार्क के अनुसार, "गत्यात्मक अवस्था में वस्तुओं की कीमत तथा लागत के अन्तर के कारण लाभ उत्पन्न होता है।'' अगत्यात्मक स्थिति (Static Condition) में आर्थिक तत्त्वों जैसे–मांग, पूर्ति, जनसंख्या आदि में कोई परिवर्तन नहीं होता। इस अवस्था में उद्यमी के लिए कोई जोखिम या अनिश्चितता नहीं होती। प्रत्येक साधन को उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर आय प्राप्त होती है। इसलिए सारा राष्ट्रीय उत्पादन साधनों में ही बंट जाता है। उद्यमी को केवल प्रबन्ध की मजदूरी (Wages of Management) अर्थात् सामान्य लाभ ही प्राप्त होते हैं। इस अवस्था में वस्तु की कीमत (AR) तथा औसत लागत (ज) बराबर होती है, इसलिए आर्थिक लाभ नहीं होता। इस अवस्था को रेखाचित्र नं. 7.6 से स्पष्ट किया जा सकता है। इस रेखाचित्र से ज्ञात होता है कि उद्यमी व्व कीमत पर OM वस्तु का उत्पादन कर रहा है। इस अवस्था में औसत आय (AR) QUANTITY तथा औसत लागत (AC) में कोई अन्तर न होने के कारण फर्म को कोई लाभ नहीं मिलेगा। इस अवस्था में मांग तथा पूर्ति एक–दूसरे के बराबर हैं।

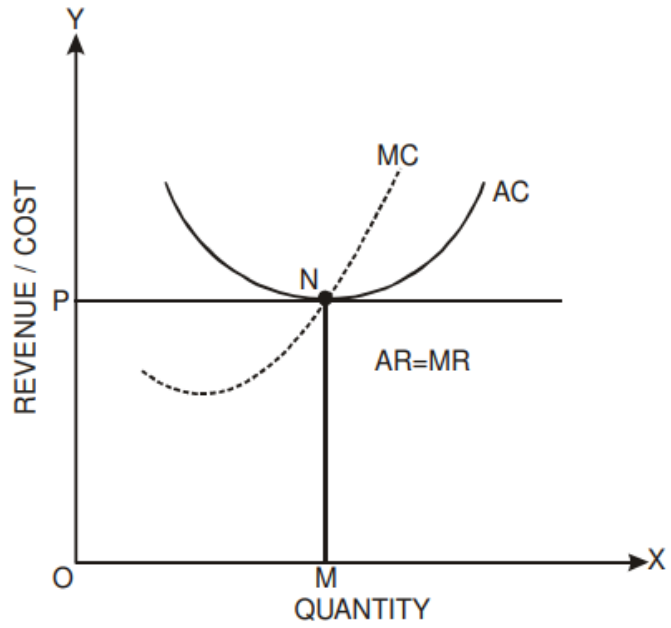

चित्र 7.6

क्लार्क के अनुसार वास्तविक जीवन में गत्यात्मक अवस्था (Dynamic) पाई जाती है। इस अवस्था में पांच प्रकार के परिवर्तन आते हैं: (1) जनसंख्या में परिवर्तन होने के कारण मांग की मात्रा में होने वाले परिवर्तन (2) मांग के प्रकार में परिवर्तन (3) उत्पादन की तकनीक में परिवर्तन (4) पूंजी की मात्रा में परिवर्तन तथा (5) व्यावसायिक संगठनों के रूप में परिवर्तन। अर्थव्यवस्था में जनसंख्या, मांग के प्रकार आदि में परिवर्तन आने के फलस्वरूप मांग की मात्रा कम या अधिक हो सकती है। इसी प्रकार उत्पादन तकनीक तथा पूंजी की मात्रा आदि में परिवर्तन आने के कारण पूर्ति में परिवर्तन आ सकते हैं। मांग तथा पूर्ति में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पादन लागत तथा कीमत में परिवर्तन हो सकता है। यदि कीमत उत्पादन लागत से बढ़ जाती है तो उद्यमी को लाभ होता है इसके विपरीत कीमत के उत्पादन लागत से कम होने के फलस्वरूप उद्यमी को हानि उठानी पड़ती है। स्टेनियर तथा हेग के अनुसार, "एक अर्थव्यवस्था में जहाँ कोई परिवर्तन नहीं होता कोई लाभ नहीं होगा।'' (In an economy where nothing changes, there can be no profit-Stonier and Hague)। संक्षेप में, क्लार्क के अनुसार गत्यात्मक अर्थव्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों के फलस्वरूप जो असंतुलन उत्पन्न होता है उसके फलस्वरूप ही लाभ प्राप्त होता है।

आलोचना (Criticism)

प्रो. नाइट इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहते हैं कि सभी प्रकार के परिवर्तनों के कारण लाभ उत्पन्न नहीं होता। परिवर्तन दो प्रकार के हो सकते हैं: (1) एक पूर्व अनुमानित परिवर्तन जिनका पहले से अनुमान लगाया जा सकता है। इन परिवर्तनों का बीमा करके इनसे होने वाली हानि से बचा जा सकता है। इसलिए इन परिवर्तनों के फलस्वरूप मांग तथा पूर्ति में सन्तुलन उत्पन्न नहीं होता। अतएव इन पूर्व अनुमानित परिवर्तनों के

फलस्वरूप लाभ उत्पन्न नहीं होता। नाईट के शब्दों में, ''सिर्फ परिवर्तन के कारण लाभ उत्पन्न नहीं होता क्योंकि अगर परिवर्तन के नियम का ज्ञान हो जाए, जैसे प्रायः हो जाता है, तो कोई लाभ उत्पन्न नहीं हो सकता।'' (It cannot then be the changes which is the cause of profits, since if the law of change is known as in fact is largely the case, no profit can arise-—Knight) (2) दूसरे अनिश्चित परिवर्तन जिनका पहले से कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इन अनिश्चित परिवर्तनों के फलस्वरूप ही लाभ उत्पन्न होता है। अतएव नाईट के अनुसार लाभ के गत्यात्मक सिद्धान्त के स्थान पर अनिश्चितता सिद्धान्त ही अधिक उपयोगी है।

नव–प्रवर्तन सिद्धान्त (Innovations Theory)

लाभ के नवप्रवर्तन सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रो. शुम्पीटर (Schumpeter) ने किया था। इस सिद्धान्त के अनुसार, उद्यमी का कार्य नव–प्रवर्तन अर्थात् नये आविष्कार करना तथा उन्हें लागू करना है। इन नव–प्रवर्तनों के फलस्वरूप उद्यमी को जो पुरस्कार प्राप्त होता है वह लाभ कहलाता है।

नव–प्रवर्तन क्या हैं? (What are Innovations?)

प्रो. शुम्पीटर के नव–प्रवर्तन शब्द का प्रयोग काफी विस्त त अर्थों में किया है। उनके अनुसार, वे सब आविष्कार तथा परिवर्तन जिनके फलस्वरूप उत्पादन लागत को कम किया जा सके या औसत आय को बढ़ाया जा सके जिससे आय तथा लागत का अन्तर अर्थात् लाभ बढ़ जाए, नव–प्रवर्तन कहलाते हैं। मान लीजिए आप एक नए प्रकार की कार का आविष्कार कर लेते हैं जिसे चलाने के लिए पैट्रोल की आवश्यकता नहीं है तो आप इस कार को काफी अधिक कीमत पर बेच सकेंगे। आपको इसके फलस्वरूप काफी लाभ प्राप्त होगा। शुम्पीटर ने नव–प्रवर्तन की व्याख्या करते हुए बताया कि इसमें वस्तु के उत्पादन की कीमत को कम करने के लिए किसी नई पद्धति को अपनाना या वस्तु की मांग को बढ़ाने के लिए नई नीति को अपनाना सम्मिलित है। पहले तरीके में नई मशीनों को लगाना, तकनीकी परिवर्तन, कच्चे माल के नए स्रोत आदि का उपयोग किया जा सकता है। दूसरे तरीके में मांग को बढ़ाने के लिए वस्तु के नए–नए आकर्षक नमूने, Production प्रचार की पद्धति जैसे कोई उपहार योजना (Gift Scheme) और नए बाजार की खोज इत्यादि सम्मिलित हैं। शुम्पीटर के अनुसार, नव–प्रवर्तन पाँच प्रकार के हो सकते हैंः (1) नई वस्तु का उत्पादन (Introduction of a New Product) (2) उत्पादन के नये तरीके का उपयोग (Introduction of a New Method of Production), (3) नये बाजार की स्थापना (Opening of a New Market), (4) कच्चे माल के नये साधन की खोज (Discovery of a New Source of Raw Material) (5) उद्योग कर पुनर्गठन (Re-organisation of an Industry)।

लाभ के नव–प्रवर्तन सिद्धान्त के अनुसार नव–प्रवर्तन के फलस्वरूप होने वाले लाभ अस्थाई (Temporary) होते हैं। इसका कारण यह है कि दूसरे उद्यमी भी नव–प्रवर्तक की नकल (Immitation) कर लेते हैं। इसके फलस्वरूप उद्यमियों में परस्पर प्रतियोगिता बढ़ जाने के कारण आर्थिक लाभ समाप्त हो जाते हैं अतएव लाभ प्राप्त करने के लिए नव–प्रवर्तन होते रहते हैं। नव–प्रवर्तन लाभ को जन्म देते हैं तथा लाभ प्राप्त करने की लालसा नव–प्रवर्तन करने के लिए उद्यमियों को प्रोत्साहित करती रहती है।

आलोचना (Criticism)

इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएं इस प्रकार की जाती हैंः (1) शुम्पीटर ने लाभ के निर्धारण में अनिश्चितता (Uncertainty) को कोई महत्व नहीं दिया है। वास्तव में सभी नव–प्रवर्तनों में अनिश्चितता होती है। यदि अनिश्चितता न हो तो लाभ भी मजदूरी के समान हो जाएगा। (2) क्लार्क की भांति शुम्पीटर ने भी उद्यमी के जोखिम उठाने के कार्य को महत्व नहीं दिया। शुम्पीटर के अनुसार, "उद्यमी कभी भी जोखिम उठाने वाला नहीं होता, यदि व्यवसाय असफल हो जाए तो भी हानि उसी को होती है जो साख प्रदान करता है।'' (The entrepreneur is never risk taker- The one who gives loan comes to grief if the undetaking fails-&

Schumpeter)। (3) इस सिद्धान्त के अनुसार, लाभ केवल नव–प्रवर्तन का परिणाम है। शुम्पीटर ने इस सिद्धान्त में लाभ के उत्पन्न होने के अन्य कारणों की अवहेलना की है।

लाभ का जोखिम सिद्धान्त (Risk Theory of Profit)

प्रसिद्ध अमेरिकन अर्थशास्त्री हॉले (Hawley) ने अपनी पुस्तक 'Enterprise and Productive Process' में लाभ के जोखिम सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार उद्यमी का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य जोखिम उठाना है। एक उद्यमी उत्पादन के अन्य साधनों जैसे–पूंजी, श्रम, भूमि को एकत्रित करके उत्पादन आरम्भ करता है। इन साधनों को पहले से तय की गई शर्तों के अनुसार उद्यमी को भुगतान (Contractual Payment) करना पड़ता है। इन साधनों की सहायता से जो उत्पादन किया जाता है उसे बेचने में समय लगता है। वस्तुओं का उत्पादन करने तथा उनकी बिक्री में जो समय का अन्तर होता है उसमें कई प्रकार के परिवर्तन आ सकते हैं। इनके फलस्वरूप वस्तु की बिक्री से प्राप्त कुल आय लागत से कम हो सकती है। अतएव उद्यमी को हानि उठाने को जोखिम सहन करना पड़ता है। एक उद्यमी जोखिम तभी उठाएगा जब उसके बदले में उसे कोई पुरस्कार दिया जाए। यह पुरस्कार ही लाभ कहलाता है। हॉले के शब्दों में, ''एक व्यवसाय का लाभ प्रबन्ध तथा समन्वय का पुरस्कार नहीं है। यह जोखिम उठाने तथा उत्तरदायित्व का पुरस्कार है।'' (The profit of an undertaking is not the reward of management or co&ordination but of the risk and responsibilities-—Hawley) हॉले के अनुसार, जोखिम तथ लाभ में आनुपातिक सम्बन्ध है। उद्यमी का जोखिम जितना अधिक होगा लाभ उतना ही अधिक होगा। इसके विपरीत जोखिम जितना कम होगा लाभ भी उतना ही कम होगा।

हॉले के अनुसार, एक उद्यमी को चार प्रकार के जोखिम उठाने पड़ सकते हैं: (1) प्रतिस्थापन की जोखिम (Replacement Risk)। (2) मुख्य जोखिम (Risk Proper)। (3) अनिश्चितता (Uncertainly)। (4) पुराना पड़ जाना (Obsolescence) प्रतिस्थापन को घिसावट भी कहते हैं। इसका अनुमान लगाया जा सकता है। यह लागत में शामिल कर लिया जाता है। अतएव इसके लिए कोई लाभ नहीं मिलता। मशीनों के पुराने पड़ जाने के सम्बन्ध में उचित अनुमान लगाना पूरी तरह सम्भव नहीं क्योंकि यह ठीक प्रकार से नहीं कहा जा सकता कि तकनीकी उन्नति के कारण मशीनों को बेकार होना पड़ेगा, अथवा नहीं होना पड़ेगा। फिर भी इसके खर्च को लागत में शामिल कर लिया जाता है। मुख्य जोखिम इस कारण उत्पन्न होती है, क्योंकि वस्तु को उत्पन्न करने तथा उसे बेचने के समय, जो अन्तर होता है उसमें कई प्रकार के अनिश्चित परिवर्तन आ सकते हैं। इसके फलस्वरूप उद्यमी को हानि भी हो सकती है। लागत में मुख्य जोखिम तथा अनिश्चितता का भाग शामिल नहीं होता। इसके लिए एक उद्यमी तभी जोखिम सहन करेगा जब उसे इसके बदले में कोई पुरस्कार मिलेगा। वह पुरस्कार ही लाभ है।

आलोचनायें (Criticisms)

लाभ के जोखिम सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएं निम्नलिखित हैं:

(1) **जोखिम कम करने का पुरस्कार (Reward for Reducing Risk)** : प्रो. कारवर (Carver) ने लाभ के जोखिम सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा है कि "लाभ इसलिए उत्पन्न नहीं होता क्योंकि योग्य उद्यमियों द्वारा जोखिम उठायी जाती है बल्कि इसलिए उत्पन्न होता है क्योंकि योग्य उद्यमी जोखिम को कम करने में समर्थ होते हैं।'' (Profits arise not because risks are borne by the entrepreneurs but because the superior entrepreneurs are able to reduce them & Carver) अतएव कारवर के अनुसार, उद्यमी लाभ इसलिए प्राप्त नहीं करते कि वे जोखिम उठाते हैं बल्कि इसलिए प्राप्त करते हैं कि वे जोखिम को नहीं उठाते हैं।

(2) **सभी प्रकार के जोखिम का पुरस्कार नहीं है (Not a Reward for All Types of Risk):** प्रो. नाईट के अनुसार प्रत्येक प्रकार के जोखिम का पुरस्कार लाभ नहीं होता। केवल ऐसा जोखिम जिसको देखा या जाना

नहीं जा सकता और इसलिए बीमा नहीं करवाया जा सकता, जैसे मांग तथा लागत की दशाओं से सम्बन्धित जोखिम। इनके परिणामस्वरूप ही लाभ उत्पन्न होता है। इसके विपरीत कुछ जोखिमों जैसे–आग, चोरी, दुर्घटना आदि का अनुमान लगाया जा सकता है तथा इसका बीमा करवा कर उनको दूर किया जा सकता है। इन जोखिमों के लिए कोई लाभ नहीं मिलता। अतएव नाईट के अनुसार लाभ केवल अनिश्चित जोखिमों का पुरस्कार है। सब प्रकार के जोखिमों का पुरस्कार नहीं है।

(3) **संकीर्ण सिद्धान्त (Narrow Theory):** आलोचकों के अनुसार लाभ का जोखिम सिद्धान्त एक संकीर्ण सिद्धान्त है। उनके अनुसार लाभ केवल जोखिम उठाने का ही पुरस्कार नहीं है। उद्यमी की प्रबन्ध करने की योग्यता, एकाधिकारी स्थिति, नव–प्रवर्तन आदि के कारण भी लाभ उत्पन्न होता है। अतएव यह सिद्धान्त लाभ के केवल एक ही तत्व का वर्णन करता है बाकी तत्वों की अवहेलना करता है।

(4) **लाभ तथा जोखिम में आनुपातिक सम्बन्ध नहीं हैं (No Proportional Relation Between Profit and Risk):** आलोचकों के अनुसार लाभ तथा जोखिम उठाने में कोई आनुपातिक सम्बन्ध नहीं है। यह आवश्यक नहीं है कि अधिक लाभ मिलेगा। यदि ऐसा होता तो सभी उद्यमी अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए जोखिम उठाते तथा कोई और विशेष कार्य नहीं करते।

लाभ का अनिश्चितता सिद्धान्त (Uncertainty Bearing Theory of Profit)

फ्रैंक नाईट के अनुसार, ''उद्यमी का मुख्य कार्य उत्पादन सम्बन्धी अनिश्चितताओं को सहन करना होता है। अनिश्चितताओं को सहन करने के प्रतिफल को ही लाभ कहा जाता है।'' (Profit is a reward for bearing uninsurable future uncertainty)। अनिश्चितताओं (Uncertainties) को सहन करने के अतिरिक्त कोई भी उद्यमी अपने उद्योग अथवा व्यवसाय में अन्य कार्य जैसे श्रमिक का कार्य, पूंजीपति का कार्य, मैनेजर का कार्य इत्यादि भी कर सकता है तथा इन सब कार्यों के लिए भी उसे प्रतिफल प्राप्त होते हैं। परन्तु इन सभी प्रतिफलों को उद्यमी के लाभ का अंश नहीं माना जाता। ये सभी प्रतिफल वेतन, ब्याज, लगान इत्यादि के प्रतिरूप माने जाते हैं। अतः इन्हें उत्पादन लागत का हिस्सा माना जाता है, लाभ नहीं माना जाता, लाभ का सम्बन्ध केवल अनिश्चितता सहन करने से ही है। दूसरे शब्दों में, लाभ एक व्यवसाय में होने वाला प्रबन्ध अथवा समन्वय का पुरस्कार नहीं है, केवल उद्यमी की अनिरिचितता सहन करने का प्रतिफल है। यहाँ अनिश्चितता तथा जोखिम के भेद को समझ लेना जरूरी होगा। व्यवसाय सम्बन्धी जोखिम दो प्रकार के हो सकते

(A) पूर्व अनुमानित जोखिम (Certain Risk): इस प्रकार के जोखिम चोरी, दुर्घटना, आग आदि से सम्बन्धित हैं। इनका प्रत्येक उद्यमी अनुमान लगा सकता है अतः वह इनकी हानि से बचने के लिए बीमा करा सकता है। इसलिए इन्हें बीमायोग्य जोखिम (Insurable Risk) कहा जाता है। ये जोखिम बीमा व्यय के कारण लागत का ही अंग बन जाते हैं, इसके लिए कोई लाभ नहीं मिलता।

(B) अनिश्चित जोखिम (Uncertain Risk): प्रो. नाइट के अनुसार, एक उद्यमी को कई प्रकार के अनिश्चित जोखिम उठाने पड़ते हैं जैसे–मांग में होने वाले परिवर्तन, नये आविष्कार, सरकारी नीति में परिवर्तन, प्रतियोगिता आदि। इन जोखिमों का पूर्वानुमान लगाना सम्भव नहीं होता इसलिए इनका बीमा भी नहीं कराया जा सकता। इन अनिश्चित जोखिमों के कारण ही लाभ उत्पन्न होता है। अनिश्चित जोखिम निम्नलिखित कारणों से हो सकते हैं:

(1) **बाजार की दशाओं में अनिश्चितता (Uncertainties in Market Condition):** प्रत्येक बाजार में मांग तथा पूर्ति में परिवर्तन आता रहता है। उत्पादक वस्तु की सम्भावित मांग के आधार पर उत्पादन करता है परन्तु यह सम्भव है कि जब उद्यमी बाजार में अपना उत्पादन बेचने के लिए तैयार हो तो मांग बहुत कम हो जाए। मांग में परिवर्तन उपभोक्ता के स्वाद या रुचि में परिवर्तन, जनसंख्या की आयु रचना, आय के वितरण

आदि के कारणों से हो सकता है। जब मांग में परिवर्तन हो जाता है तो फर्म की आय में भी परिवर्तन होता है। मांग के अचानक कम होने के कारण फर्म को काफी हानि उठानी पड़ती है। अतएव बाजार दशओं में परिवर्तन के फलस्वरूप उद्यमी को अनिश्चितता का सामना करना पड़ता है।

(2) **प्रतियोगिता सम्बन्धी अनिश्चितता (Competitive Uncertainty):** बाजार में नई फर्मों के आने तथा प्रतियोगिता के कारण पुरानी फर्मों के लिए बाजार स्थितियाँ और अनिश्चित हो जाती हैं। नई फर्मों के कारण पुरानी फर्मों की बिक्री कम हो सकती है तथा उनके लाभ कम होने की सम्भावना बढ़ जाती है। उद्योग में नई फर्मों के प्रवेश करने तथा उनकी प्रतियोगिता शक्ति के सम्बन्ध में सदैव अनिश्चितता बनी रहती है।

(3) **सरकारी हस्तक्षेप (Government Interference):** आर्थिक विकास एवं आर्थिक स्थायित्व लाने के दृष्टिकोण से सरकार अर्थव्यवस्था में हस्तक्षेप करती है। कभी–कभी सरकार ऐसे अनिश्चित कदम उठा लेती है, जिनका उद्यमी वर्ग होता। परिणामस्वरूप, उन्हें अनायास ही लाभ अथवा हानि उठानी पड़ती है। मुद्रा अवमूल्यन, आयात–निर्यात नियन्त्रण इत्यादि सरकार के आकस्मिक हस्तक्षेप के कुछ प्रमुख उदाहरण हैं।

(4) **तकनीकी परिवर्तन (Technological Innovations):** आज का युग तकनीकी परिवर्तनों का युग है। प्रायः मशीनों तथा उत्पादन के अन्य पूंजीगत साधनों को घिसने से पहले बदलना पड़ता है। अन्यथा उत्पादन लागत के आधार पर किसी भी उद्यमी के लिए टिकना कठिन हो जाता है। तेजी से होने वाले औद्योगिक आविष्कारों के कारण उद्यमी के अनिश्चित–जोखिम प्रबल होते जा रहे हैं।

(5) **व्यापारिक चक्र (Business Cycles):** व्यापारिक उतार–चढ़ाव किसी भी पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की मूल विशेषतायें हैं। मन्दी के समय बाजार में मांग की भारी कमी होती है। चूंकि यह मन्दी अर्थव्यवस्था में होने वाली विभिन्न प्रक्रियाओं के पारस्परिक प्रभावों से उत्पन्न होती है इसलिए किसी उद्यमी द्वारा इसकी रोकथाम अथवा इनके प्रभाव का पूर्वानुमान लगाना असम्भव होता है। परिणामस्वरूप, उद्यमी की व्यावसायिक अनिश्चितता में वृद्धि होती है।

संक्षेप में, प्रो. शैकल (Schakle) के अनुसार प्रत्येक उद्यमी वस्तुओं का उत्पादन कुछ आशंसाओं (Expectations) के आधार पर करता है। ये आशंसायें ही मुख्य रूप से अनिश्चितता को जन्म देती हैं। आशंसायें दो प्रकार की हो सकती

(1) **सामान्य आशंसायें (General Expectations):** इनका सम्बन्ध सारी अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित तत्वों में भविष्य में होने वाले परिवर्तन है। इन तत्वों का सम्बन्ध राष्ट्रीय आय, कीमत स्तर, भुगतान सन्तुलन आदि में होने वाले परिवर्तनों से है

(2) **विशेष आशंसायें (Particular Expectations):** इन आशंसाओं का सम्बन्ध एक फर्म या उद्योग से सम्बन्धित तत्वों में भविष्य में होन वाले परिवर्तन से है। इनका सम्बन्ध प्रतियोगी की कीमत नीति आदि से है। इन आशंसाओं के फलस्वरूप ही लाभ उत्पन्न होता है। कोई उद्यमी जितनी अधिक अनिश्चितता उठाने के लिए तैयार होना उतना ही अधिक लाभ उसको प्राप्त होगा।

आलोचनायें (Criticisms)

इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनायें निम्नलिखित हैं:

(1) **लाभ के अन्य तत्वों की अवहेलना (Ignores Other Determinants of Profit):** लाभ अनिश्चितता सहन करने का ही पुरस्कार नहीं है। इस सिद्धान्त में उद्यमी के अन्य कार्य जैसे–प्रबंध करना, समन्वय करना, इत्यादि को कोई स्थान नहीं दिया गया है अतएव यह सिद्धान्त लाभ का एक अपूर्ण सिद्धान्त है।

(2) **अवास्तविक मान्यता (Unrealistic Assumption):** इस सिद्धान्त की यह मान्यता उचित नहीं है कि उद्यमी की पूर्ति के सीमित होने का मुख्य कारण अनिश्चितता है। अनिश्चितता ही उद्यमी की सीमित पूर्ति तथा परिणामस्वरूप लाभ के उत्पन्न होने का एकमात्र कारण नहीं है। उद्यमी की सीमित पूर्ति के लिए अन्य कारण जैसे पूंजी का अभाव, ज्ञान एवं अवसर का अभाव इत्यादि भी उतने ही महत्वपूर्ण तत्व हैं। परन्तु इसका अनिश्चितता सिद्धान्त में समावेश नहीं किया गया है।

(3) **अस्पष्ट सिद्धान्त (Vague Theory):** अनिश्चितता उठाने का सिद्धान्त लाभ के निर्धारण का एक अस्पष्ट सिद्धान्त है। आजकल संसार में बहुराष्ट्रीय निगमों (Multinational Corporations) तथा उनकी एकाधिकारी शक्तियों का इतना अधिक महत्व है कि वे अपने लाभ से एक सीमा तक निश्चितता लाने में सफल हो गए हैं। नाईट का अनिश्चितता सिद्धान्त ऐसी परिस्थितियों में तर्कसंगत नहीं जाना जाता।

(4) **संयुक्त पूंजी कम्पनियों पर लागू नहीं होती (Not Applicable in Case of Joint Stock Companies):** संयुक्त पूंजी कम्पनियों के सम्बन्ध में नाईट का अनिश्चितता सिद्धान्त शंका रहित नहीं है। ऐसी कम्पनियों में लाभ के अधिकारी केवल फर्म के हिस्सेदार (Shareholders) होते हैं। उद्यम सम्बन्धी किसी भी कार्य को वे नहीं करते। उद्यम सम्बन्धी कार्य अथवा निर्णय वेतन पाने वाले प्रबन्धक ही करते हैं। अतः फर्म के हिस्सेदार जो कि लाभ के अधिकारी होते हैं, किसी भी प्रकार के निर्णय नही लेते। जबकि निर्णय लेने वाले अधिकारी लाभ के अधिकारी नहीं होते। इन कम्पनियों में लाभ का बंटवारा किस आधार पर होगा। इस सम्बन्ध में भी अनिश्चितता सिद्धान्त कोई प्रकाश नहीं डालता।

(5) **अनिश्चितता उत्पादन का पथक साधन नहीं है (Uncertainty is Not a Separate Factor of Production):** नाईट की यह मान्यता भी ठीक नहीं है कि अनिश्चितता, श्रम, भूमि, पूंजी आदि के समान उत्पादन का एक पथक साधन है। अनिश्चितता एक मनोवैज्ञानिक धारणा है जो उत्पादन की वास्तविक लागत (Real Cost) का भाग है, परन्तु उत्पादन के साधनों की पूर्ति उनकी वास्तविक लागत के स्थान पर मौद्रिक लागत पर निर्भर करती है।

संक्षेप में, लाभ का निर्धारण का कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं है। लाभ कई तत्वों जैसे–गत्यात्मकता, नव–प्रवर्तन, जोखिम तथा अनिश्चितता का पुरस्कार है।

एकाधिकारी लाभ का सिद्धान्त या फायदे की स्थिति (Theory of Monopoly Profit of Position of Advantage)

सैन्यूअलसन के अनुसार अधिकतर लोग लाभ के सम्बन्ध में यदि सशंकित नहीं होते तो आलोचनात्मक अवश्य होते हैं। जो लोग लाभ की आलोचना करते हैं लाभ उनके लिए मजदूरी या प्रतियोगी बाजार में जोखिम को समान करने वाले पुरस्कार का रूप नहीं होता। एक मुनाफाखोर का जो चित्र उनके सामने होता है उसमें वह एक ऐसे व्यक्ति के रूप में दिखाया जाता है जो कपट पूर्ण हिसाब किताब में दक्ष होता है और किसी न किसी प्रकार शेष समाज का शोषण करता रहता है। सम्भवतया आलोचकों के मन में लाभ का अर्थ होता है, "एकाधिकार से प्राप्त आय के रूप में लाभ।"

एकाधिकारी को अपनी फायदेमन्द स्थिति के कारण जो लाभ होता है उसे एकाधिकारी लाभ (Monopoly Profits) कहा जाता है। एकाधिकारी वस्तु की पूर्ति या कीमत को नियमित करके सामान्य लाभ से अधिक आय प्राप्त कर सकता है। एक एकाधिकारी नई फर्मों के प्रवेश को रोकने की योग्यता एवं क्षमता रख्ता है। परिणामस्वरूप वह अपने उत्पादन की पूर्ति को सीमित करके दीर्घकाल में भी असामान्य लाभ प्राप्त कर सकता है। इस सम्बन्ध में एकाधिकारी की स्थिति प्रतियोगी फर्म की स्थिति से अधिक लाभदायक होगी।

फायदेमन्द स्थिति या एकाधिकारी लाभ के कारण
(Causes of the Position of Advantage of Monopoly Gain)

फायदेमन्द स्थिति के फलस्वरूप लाभ उत्पन्न होने के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं :

(i) **कृत्रिम दुर्लभताएं (Contrived Scarcities):** सैम्युअलसन के अनुसार एकाधिकारी, कृत्रिम दुर्लभताएं पैदा करने की स्थिति में होता है। इस प्रकार की दुर्लभताएं पेटन्ट, कापीराइट, कच्चे माल की अधिकतर पूर्ति पर अधिकार इत्यादि के कारण उत्पन्न होती हैं। कृत्रिम दुर्लभताएं पैदा करके एकाधिकारी को अपने उत्पादन की पूर्ति को सीमित करने से लाभ प्राप्त होता है।

(ii) **रचनात्मक योग्यता की दुर्लभता (Scarcity of Creative Ability):** हाब्सन के अनुसार एकाधिकारी लाभ का। कारण उद्यमियों में रचनात्मक योग्यता की कमी है। इसके फलस्वरूप उद्यमियों की पूर्ति कम हो जाती है। उनमें अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति के कारण ये उद्यमी श्रम को उसकी सीमान्त उत्पादकता से कम मजदूरी देकर आधिक्य (Surplus) प्राप्त करते हैं। यह आधिक्य या बलात् आय उनके लाभ का कारण बनता है।

(iii) **नवप्रवर्तन (Innovations):** प्रो. शुम्पीटर के अनुसार जब कोई फर्म नवप्रवर्तन करती है तो उस वस्तु के उत्पादन के प्रारम्भ में वह फर्म एकाधिकार की स्थिति में होती है। इसलिए उसे अधिक लाभ प्राप्त होते हैं। वह वस्तु की कीमत, एकाधिकार में कीमत निर्धारण के सिद्धान्त के अनुसार तय करती है अतएव उसे एकाधिकार लाभ प्राप्त होते हैं।

(iv) **व्यवसाय की अनिश्चितता (Uncertainty in Business):** फ्रैंक नाईट के अनुसार व्यवसाय में अनिश्चितता की प्रव त्ति पाये जाने के फलस्वरूप एकाधिकारी लाभ उत्पन्न होते हैं। जिन उद्योगों में अनिश्चितता अधिक होती है उनमें जो उद्यमी अनिश्चितता को सफलतापूर्वक सहन नहीं कर सकते हैं उन्हें अधिक लाभ प्राप्त होते हैं। उनकी स्थिति उन उद्यमियों से अधिक फायदेमन्द होती है जो अनिश्चितता का अनुमान लगाने में असमर्थ रहते हैं।

संक्षेप में, नव–प्रवर्तन, अगतिशीलता, अनिश्चितता वहन करने की शक्ति, कृत्रिम दुर्लभताएं आदि दशाएं एक उद्यमी की स्थिति को अधिक फायदेमन्द बना देती हैं। इसके फलस्वरूप उन्हें अधिक लाभ होते हैं।

लघु प्रश्नः

1. ब्याज को परिभाषित करें
2. सकल ब्याज और शुद्ध ब्याज के बीच अंतर
3. लाभ को परिभाषित करें।
4. संक्षेप में लाभ की प्रकृति के बारे में बताएं।

लंबे प्रश्नः

1. ब्याज से आपका क्या अभिप्राय है? ब्याज के शास्त्रीय सिद्धांत का भी वर्णन करें।
2. ब्याज के विभिन्न सिद्धांतों के बारे में विस्तार से बताएं।
3. ब्याज को परिभाषित करें। ब्याज की तरलता वरीयता सिद्धांत भी समझाएं।
4. लाभ को परिभाषित करें। लाभ के गतिशील सिद्धांत की भी व्याख्या करें।
5. लाभ के सिद्धांतों पर एक विस्तृत नोट लिखें?